

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 2 अध्याय 9: ब्रह्मा और चार सार-श्लोक

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



कारण-सागर की नीरवता में, भगवान् ब्रह्मा को अपना दिव्य धाम दिखाते हैं और उन्हें भागवत के चार सार-श्लोक सुनाते हैं — वह बीज जिससे यह सम्पूर्ण शास्त्र विकसित होता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। आठवाँ अध्याय राजा परीक्षित द्वारा श्रीशुकदेव गोस्वामी से प्रश्न पूछने के साथ समाप्त हुआ था — भगवान् ने युगों-युगों तक किस प्रकार सृष्टि की, उसका पालन किया, तथा कार्य किया, और उनके अनेक रूपों का यथार्थ स्वरूप क्या है? सीधे उत्तर देने के बजाय, शुकदेव अब उस सबसे प्राचीन शिक्षा की ओर लौटते हैं जिसे वे जानते हैं: वह दिन जब स्वयं परम भगवान् सृष्टि के साक्षात् शिल्पकार ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हुए, और उन्हें केवल चार श्लोकों में सम्पूर्ण भागवत का सार-तत्त्व प्रदान किया। यह नवम अध्याय सम्पूर्ण पुराण के सर्वाधिक सैद्धान्तिक रूप से महत्त्वपूर्ण अंशों में से एक को धारण करता है: चतुःश्लोकी भागवतम्, “चार-श्लोक भागवतम्”, इतना संक्षिप्त और इतना पूर्ण कि परम्परा इस शास्त्र के शेष अठारह हजार श्लोकों को इन्हीं का विस्तार मानती है। यहाँ ब्रह्मा की अपनी तपस्या, भगवान् के दिव्य धाम का उनका दर्शन, तथा उनकी हृदयस्पर्शी प्रार्थना उन चार श्लोकों की भूमिका तैयार करते हैं — और अध्याय इस बात का अनुसरण करते हुए समाप्त होता है कि यही शिक्षा किस प्रकार भगवान् से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से नारद को, तथा नारद से व्यास तक — उन्हीं ऋषि तक जिन्होंने इसे इस शास्त्र के रूप में लिपिबद्ध किया — क्रमशः हस्तान्तरित होती गई।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 2 (द्वितीय स्कन्ध)
- अध्याय: 9 (नवम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: ब्रह्मा भगवान् के अपने ही परम धाम का दर्शन पाते हैं तथा उनसे केवल चार श्लोकों में भागवत का मूल तत्त्व ग्रहण करते हैं
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, जो राजा परीक्षित को एक अत्यन्त प्राचीन स्मृति सुनाते हैं — ब्रह्मा का अपना विवरण, जो उन्होंने अपने पुत्र नारद को दिया था, उस दिन का जब स्वयं परम भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए तथा उनसे बोले; उस स्मृति के भीतर, चार श्लोकों के वक्ता स्वयं भगवान् हैं
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित (शुकदेव से सुनते हुए); कथित विवरण के भीतर, ऋषि नारद (अपने पिता ब्रह्मा से सुनते हुए) तथा स्वयं ब्रह्मा (भगवान् से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: सृष्टि के प्रभात का कारण-सागर, जहाँ ब्रह्मा अपनी तपस्या करते हैं तथा भगवान् के दिव्य धाम का दर्शन पाते हैं; जो शुकदेव के परीक्षित को दिए गंगा-तटीय उपदेश तथा नैमिषारण्य के वन-आश्रम के भीतर कथित है
- मुख्य विषय-वस्तु: जल में सुने गए एक रहस्यमय आदेश के उत्तर में ब्रह्मा की तपस्या, भगवान् के परम धाम तथा स्वयं भगवान् का उनका दर्शन, तथा वे चार सार-श्लोक (चतुःश्लोकी भागवतम्) जो भगवान् उन्हें सुनाते हैं — सम्पूर्ण शास्त्र की बीज-शिक्षा
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 1-45
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

शुकदेव की भूमेका: संसार से आत्मा का सम्बन्ध केवल माया द्वारा

ब्रह्मा की कथा की ओर लौटने से पहले, श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित को आत्मा के स्वभाव के विषय में एक संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण देते हैं। आत्मा, वे कहते हैं, शुद्ध चेतना है — और यथार्थ में ऐसी आत्मा का इस संसार की वस्तुओं तथा घटनाओं से कोई तनिक भी नाता नहीं जुड़ता, उससे अधिक नहीं जितना किसी सोए हुए पुरुष का अपने ही स्वप्न-दृश्यों से जुड़ता है। केवल भगवान् की माया, उनकी मोहक सृजन-शक्ति के माध्यम से ही, ऐसा सम्बन्ध प्रतीत होता है।

श्रीशुक उवाच

आत्ममायामृते राजन् परस्यानुभवात्मनः ।

न घटेतार्थसम्बन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca ātma-māyām ṛte rājan parasyānubhavātmanaḥ na ghaṭetārtha-sambandhaḥ
svapna-draṣṭur ivāñjasā*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: हे राजन्, भगवान् की अपनी माया के अतिरिक्त, आत्मा — जो साक्षात् चेतना ही है — का इस संसार की वस्तुओं से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं हो सकता, ठीक वैसे ही जैसे स्वप्न देखने वाले का स्वप्न में देखी गई वस्तुओं से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं होता। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 1)

यही माया है, शुकदेव आगे कहते हैं, जो देहधारी आत्मा को अनेकानेक रूप धारण करता हुआ प्रतीत कराती है; इन्द्रिय-विषयों में आनन्द लेते हुए, वह “मैं” तथा “मेरा” की भावना विकसित करता है। किन्तु जब वही आत्मा अपनी ही महिमा में जाग उठता है — एक ऐसी महिमा जो काल तथा माया, दोनों से परे है — तो वह इन दोनों भावनाओं को पूर्णतः त्याग देता है तथा तीनों गुणों से ऊपर उठ जाता है। इस भूमिका के साथ, शुकदेव घोषणा करते हैं कि वे अब उसी सत्य का वर्णन करेंगे जो भगवान् ने एक बार ब्रह्मा को सिखाया था, जब उन्होंने ब्रह्मा की सच्ची तपस्या की स्वीकृति के रूप में उन्हें अपना दिव्य स्वरूप दिखाया था।

ब्रह्मा की तपस्या और जल से आया शब्द

शुकदेव तत्पश्चात् परीक्षित को आदि-काल में ले जाते हैं। ब्रह्मा, अपने ही कमल-आसन पर विराजमान, सृष्टि का कार्य आरम्भ करना चाहते थे, किन्तु प्रयास करने पर भी उन्हें आगे बढ़ने के लिए आवश्यक दृष्टि नहीं मिल रही थी। जब वे इस कठिनाई में डूबे बैठे थे, तो उन्होंने अपने चारों ओर के कारण-जल में से एक रहस्यमय द्वि-अक्षरी शब्द — दो बार उच्चारित — सुना, जो स्वयं तपस्या का ही शब्द था।

स चिन्तयन् द्व्यक्षरमेकदाम्भ-

स्युपाशृणोद् द्विर्गदितं वचो विभुः ।

स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं

निष्किञ्चनानां नृप यद् धनं विदुः ॥ ६ ॥

sa cintayan dvy-akṣaram ekadāmbhasy upāśṛṇod dvir-gaditaṁ vaco vibhuḥ sparśeṣu yat ṣoḍaśam ekaviṁśaṁ niṣkiñcanānāṁ nṛpa yad dhanam viduḥ

अर्थ: जब ब्रह्मा चिन्तनमग्न बैठे थे, तो उन्होंने कारण-जल में एक द्वि-अक्षरी शब्द दो बार उच्चारित सुना — वह शब्द जो सर्वस्व त्याग करने वालों की एकमात्र सम्पत्ति के रूप में जाना जाता है। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 6)



ब्रह्मा, विशाल कारण-सागर में अपने कमल पर विराजमान, एक अदृश्य वाणी से द्वि-अक्षरी शब्द — "तप" — सुनते हैं, और अन्य किसी को न पाकर, इसे भगवान् की ही आज्ञा मानकर तपस्या का संकल्प लेते हैं (श्लोक 5-7)।

ब्रह्मा ने वक्ता को देखने के लिए चारों दिशाओं में देखा, किन्तु किसी को न पाया। उस शब्द को एक सुझाव मानते हुए, वे पुनः अपने आसन पर बैठ गए और अपना हृदय तपस्या पर स्थिर कर लिया, “मानो भगवान् द्वारा ही आदेशित हो।” तपस्वियों में सर्वश्रेष्ठ उस ब्रह्मा ने अपने श्वास तथा मन को वश में किया, अपनी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को वश में किया, और शान्त मन से एक हजार दिव्य वर्षों तक — वह तपस्या की जिसने “समस्त लोकों को प्रकाशित किया” (अर्थात् उन्हें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की योजना का दर्शन कराया)।

भगवान् के परम धाम का दर्शन

इस तपस्या से प्रसन्न होकर, भगवान् ने ब्रह्मा को सृष्टि की मात्र एक योजना से कहीं अधिक कुछ प्रदान किया: अपने ही परम धाम का साक्षात् दर्शन, वह लोक जिससे उच्चतर कोई अन्य लोक नहीं है, जो क्लेश, मोह तथा भय से पूर्णतः रहित है, तथा जो उन प्रबुद्ध आत्माओं द्वारा सर्वत्र प्रशंसित है जिन्होंने इसे देखा है।

तस्मै स्वलोकं भगवान् सभाजितः

सन्दर्शयामास परं न यत्परम् ।

व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं

स्वदृष्टवद्विर्पुरुषैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥

tasmai svalokaṁ bhagavān sabhājitaḥ sandarśayām āsa param na yat param vyapeta-saṅkleśa-vimoha-sādhvasaṁ sva-dṛṣṭavadbhir puruṣair abhiṣṭutam

अर्थ: उनसे प्रसन्न होकर, भगवान् ने ब्रह्मा को अपना परम धाम दिखाया, जिससे उच्चतर कोई अन्य लोक नहीं है, जो समस्त क्लेश, मोह तथा भय से मुक्त है, तथा जिसे स्वयं दर्शन पाने वाली प्रबुद्ध आत्माएँ सराहती हैं। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 9)



भगवान् ब्रह्मा की तपस्या को अपने दिव्य धाम के दर्शन से पुरस्कृत करते हैं — तीनों गुणों, काल तथा माया से अस्पृष्ट, चार-भुजाधारी दिव्य परिचारकों तथा देदीप्यमान विमानों से भरा हुआ (श्लोक 9-13)।

उस लोक में, शुकदेव बताते हैं, न रजस् है, न तमस्, न ही किसी के साथ मिश्रित सत्त्व; सर्वनाशकारी काल भी वहाँ शक्तिहीन है, और माया भी वैसी ही है — तो फिर आसक्ति अथवा लोभ जैसी माया की सन्तानें वहाँ कैसे प्रवेश कर सकती हैं? वहाँ निवास करने वाले परिचारक, जिनकी देवता तथा दानव समान रूप से आराधना करते हैं, चार-भुजाधारी, समृद्ध रूप से अलंकृत, पारदर्शी वर्ण के तथा देदीप्यमान सौन्दर्य के हैं। उस लोक में विमान वर्षा-ऋतु के आकाश की भाँति विद्युत् से चमकते हुए झिलमिलाते हैं, तथा भाग्य की देवी श्री एक झूले पर बैठकर अपने प्रिय भगवान् की लीलाओं का गान करती हैं, जबकि उस शाश्वत वसन्त के भ्रमर उनकी ही स्तुति में गुंजार करते हैं।

ब्रह्मा स्वयं भगवान् का दर्शन करते हैं

इस दर्शन के केन्द्र में, ब्रह्मा अन्ततः स्वयं भगवान् के दर्शन पाते हैं — अपने भक्तों के रक्षक, श्री के स्वामी, यज्ञों के भोक्ता, अपने प्रमुख परिचारकों — सुनन्द, नन्द, प्रबल तथा अर्हण — से सेवित।

ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं

श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ।

सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः

स्वपार्षदाग्रैः परिसेवितं विभुम् ॥ १४ ॥

dadarśa tatrākhila-sātvatām patim śriyaḥ patim yajña-patim jagat-patim sunanda-nanda-prabalārhaṇādibhiḥ sva-pārśadāgraiḥ parisevitām vibhum

अर्थ: ब्रह्मा ने वहाँ अपने समस्त भक्तों के स्वामी, श्री के स्वामी, यज्ञों के भोक्ता तथा ब्रह्माण्ड के अधिपति का दर्शन किया, जो अपने प्रमुख सेवकों सुनन्द, नन्द, प्रबल, अर्हण तथा अन्य के द्वारा सेवित थे। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 14)

भगवान् की दृष्टि में स्वयं अमृत है, तथा उनके मुखमण्डल पर एक कृपापूर्ण मुस्कान विराजमान है; उनके नेत्र लालाभ हैं, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, शरीर सदैव पीताम्बर से आच्छादित, उनकी चार भुजाएँ स्पष्ट पहचानी जा सकती हैं, तथा उनका वक्षस्थल एक स्वर्णिम रेखा से चिह्नित है — देवी लक्ष्मी की उपस्थिति का चिह्न। अपनी पच्चीस शक्तियों तथा अपने छः शाश्वत, दिव्य गुणों के मध्य विराजमान, वे सदैव अपने ही आनन्दमय स्वरूप में रमण करते हैं। उन्हें देखते ही ब्रह्मा का हृदय आनन्द से भर उठता है; उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, तथा प्रेमातिरेक से उनके नेत्रों में अश्रु आ जाते हैं, और सृष्टि के रचयिता उन चरण-कमलों में नमन करते हैं जिन्हें केवल परमहंसों के मार्ग से — सम्पूर्ण त्याग के मार्ग से — प्राप्त किया जा सकता है। भगवान्, ब्रह्मा को अपने समक्ष प्रेम तथा विनम्रता में खड़ा, आज्ञा पाने के लिए तत्पर देखकर हर्षित होते हैं, ब्रह्मा का हाथ पकड़ लेते हैं, तथा एक कोमल मुस्कान से देदीप्यमान वाणी में उनसे बोलते हैं।

भगवान् बोलते हैं: तपस्या मेरा ही हृदय है

भगवान् के ब्रह्मा से प्रथम शब्द मान्यता तथा आमन्त्रण के शब्द हैं। ब्रह्मा की दीर्घ तपस्या, जो हृदय में समस्त वेदों को धारण करते हुए की गई, भगवान् को पूर्णतः प्रसन्न कर चुकी है — क्योंकि वे कहते हैं, पाखण्डी योगी उन्हें कदाचित् ही प्रसन्न कर सकते हैं। ब्रह्मा को अपनी इच्छित वस्तु माँगने का आमन्त्रण दिया जाता है, क्योंकि प्रत्येक प्रयास जो कोई आत्मा अपने ही कल्याण के लिए करती है, भगवान् की दृष्टि में फलीभूत होता है। ब्रह्मा ने अभी जो दर्शन पाया है, भगवान् आगे कहते हैं, वह स्वयं बुद्धि की सर्वोच्च उपलब्धि है — अपने ही परम धाम का प्रत्यक्ष दर्शन, जो केवल इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि ब्रह्मा ने भगवान् की ही आज्ञा से यह तपस्या अत्यन्त विनम्र भाव से की (श्लोक 21)।

तत्पश्चात् भगवान् एक विलक्षण बात प्रकट करते हैं: उन्होंने स्वयं ही ब्रह्मा को यह तपस्या करने की आज्ञा दी थी, एकाकी जल में वह रहस्यमय द्वि-अक्षरी शब्द इसलिए कहा था क्योंकि ब्रह्मा को यह ज्ञात नहीं था कि सृष्टि के साथ कैसे आगे बढ़ा जाए। और तपस्या, भगवान् कहते हैं, कुछ और नहीं अपितु उनका अपना हृदय है — वही साधन जिससे वे स्वयं ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं, उसका पालन करते हैं, तथा समय आने पर उसे पुनः अपने भीतर समेट लेते हैं।

सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः।

बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥ २३ ॥

śṛjāmi tapasaivedaṁ grasāmi tapasā punaḥ bibharmi tapasā viśvaṁ vīryaṁ me duścaraṁ tapaḥ

अर्थ: मैं इस ब्रह्माण्ड की रचना केवल तपस्या से करता हूँ, तथा तपस्या से ही पुनः इसे समेट लेता हूँ; तपस्या से ही मैं इसका पालन भी करता हूँ — मेरी शक्ति स्वयं तपस्या में निहित है, जो दुष्कर है। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 23)

ब्रह्मा की प्रार्थना: मकड़ी और उसका जाल

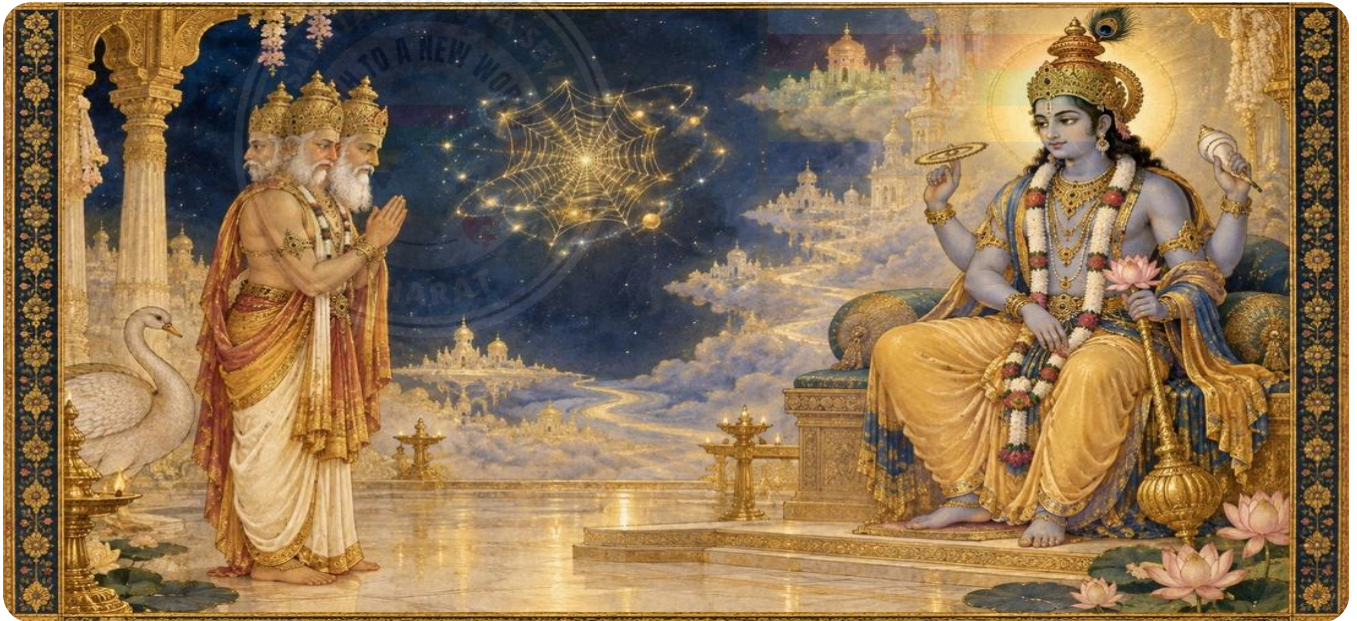
कुछ भी माँगने की अनुमति पाकर, ब्रह्मा की माँग विलक्षण रूप से विनम्र है। चूँकि भगवान् पहले से ही, प्रत्येक हृदय में साक्षी के रूप में विराजमान, यह जानते हैं कि ब्रह्मा क्या करना चाहते हैं, ब्रह्मा केवल एक ही वस्तु माँगते हैं: यह अन्तर्दृष्टि कि भगवान् अपनी ही माया के द्वारा किस प्रकार इस ब्रह्माण्ड को स्वयं से प्रक्षेपित करते हैं, उसे धारण करते हैं, तथा फिर उसे पुनः समेट लेते हैं — यह सब स्वयं बने रहते हुए।

यथात्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ।

विलुम्पन् विसृजन् गृह्णन् बिभ्रदात्मानमात्मना ॥ २७ ॥

yathātma-māyā-yogena nānā-śakty-upabṛñhitam vilumpan visṛjan gṛhṇan bibhrad ātmānam ātmanā

अर्थ: [ब्रह्मा ने प्रार्थना की:] जैसे मकड़ी अपने ही भीतर से जाल बुनती है, उसमें क्रीड़ा करती है, तथा फिर उसे अपने ही मुख में समेट लेती है, वैसे ही आप, हे माधव, अपनी ही अनेक शक्तियों से सम्पन्न माया के द्वारा, इस ब्रह्माण्ड को प्रक्षेपित करते, धारण करते तथा पूर्णतः स्वयं ही समेट लेते हैं। कृपया मुझे यह समझने की अन्तर्दृष्टि प्रदान करें कि आप ऐसा कैसे करते हैं। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 26-27)



ब्रह्मा इस अन्तर्दृष्टि के लिए प्रार्थना करते हैं कि भगवान्, एक मकड़ी की भाँति जो अपने ही जाल को बुनती, उसमें निवास करती तथा पुनः समेट लेती है, अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को कैसे प्रक्षेपित, धारण तथा संहृत करते हैं (श्लोक 26-27)।

ब्रह्मा आगे भगवान् की आज्ञाओं को अथक तथा बिना आसक्ति के पूर्ण करने की शक्ति माँगते हैं, तथा इस अभिमान से सुरक्षा माँगते हैं कि वे स्वयं को किसी प्रकार परमेश्वर के समकक्ष समझने लगे, केवल इसलिए कि भगवान् ने उन पर हाथ पकड़ने, मित्र कहने जैसी व्यक्तिगत कृपा दर्शाई है। वे केवल यह चाहते हैं कि, अभ्रमित मन से, सृष्टि के प्रकट होते ही, वे स्वयं जीवों को उनकी प्रकृति तथा पूर्व-कर्मों के अनुसार वर्गीकृत करते हुए एक विनम्र सेवक बने रहें।

चार श्लोक: चतुःश्लोकी भागवतम्

आगे जो आता है वह न केवल इस अध्याय अपितु, दीर्घ परम्परा के अनुसार, सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतम् का सैद्धान्तिक हृदय है। भगवान् ब्रह्मा को अपने विषय में सर्वाधिक गोपनीय ज्ञान प्रदान करने का प्रस्ताव देते हैं — वे कितने महान् हैं, उनका सारभूत स्वरूप क्या है, वे कितने रूपों में प्रकट होते हैं, तथा उनके वास्तविक कार्य क्या हैं। तत्पश्चात् वे चार ऐसे श्लोक कहते हैं जो इतने पूर्ण हैं कि भागवत के आगे आने वाले अठारह हजार श्लोकों को परम्परागत रूप से इन्हीं का विस्तार माना जाता है। यह लेख इन चार श्लोकों को अत्यन्त सावधानी से प्रस्तुत करता है, किसी उधार लिए गए निर्वचन के बजाय गीता प्रेस के मूल स्रोत के सीधे अर्थ को प्रस्तुत करते हुए।

प्रथम श्लोक सृष्टि से पूर्व भगवान् के एकमात्र तथा सम्पूर्ण अस्तित्व, तथा सृष्टि के दौरान एवं उसके परे उनकी निरन्तरता को स्थापित करता है।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम् ।

पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥

aham evāsam evāgre nānyad yat sad-asat param paścād ahaṁ yad etac ca yo 'vaśiṣyeta so 'smy aham

अर्थ: [चार श्लोकों में से प्रथम।] सृष्टि से पूर्व मैं ही अकेला अस्तित्व में था, तथा मेरे अतिरिक्त कुछ भी नहीं था — न स्थूल, न सूक्ष्म, न ही इन दोनों का कारण। सृष्टि के पश्चात् भी मैं इस प्रकट ब्रह्माण्ड के रूप में विद्यमान हूँ, और जब यह संहृत हो जाएगा तब भी केवल मैं ही शेष रहूँगा। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 32)

द्वितीय श्लोक माया को ही परिभाषित करता है — वह जो प्रकट होती हुई प्रतीत होती है, किन्तु भगवान् से पृथक् कोई वास्तविकता नहीं रखती।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥ ३३ ॥

ṛte 'rthaṁ yat pratīyeta na pratīyeta cātmani tad vidyād ātmano māyāṁ yathābhāso yathā tamaḥ

अर्थ: [द्वितीय श्लोक।] जो आत्मा से पृथक् अपनी स्वयं की वास्तविकता रखता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु आत्मा को अकेले देखने पर जिसका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं पाया जाता — उसे आत्मा की अपनी ही माया समझा जाना चाहिए, जैसे कोई भ्रामक द्वितीय प्रकाश अथवा अन्धकार। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 33)

तृतीय श्लोक उस प्रसिद्ध स्थूल-तत्त्वों के दृष्टान्त को प्रस्तुत करता है जो यह समझाता है कि भगवान् एक साथ उन प्राणियों में विद्यमान तथा उनसे परे कैसे हैं जिन्हें वे व्याप्त करते हैं।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चाववेष्वनु ।

प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ३४ ॥

yathā mahānti bhūtāni bhūteṣūccāveṣv anu praviṣṭāny apraviṣṭāni tathā teṣu na teṣv aham

अर्थ: [तृतीय श्लोक।] जैसे महाभूतों के विषय में कहा जाता है कि वे उन अनेक प्राणियों में — बड़े तथा छोटे — जो उन्हीं से बने हैं, प्रविष्ट भी हुए हैं तथा प्रविष्ट भी नहीं हुए हैं, वैसे ही मैं भी उन्हीं प्राणियों में हूँ, तथा नहीं भी हूँ। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 34)

चतुर्थ श्लोक ब्रह्मा को — तथा उनके पश्चात् प्रत्येक साधक को — इस एकमात्र सत्य की खोज की वास्तविक विधि प्रदान करता है।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनात्मनः ।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥ ३५ ॥

etāvad eva jijñāsyam tattva-jijñāsunātmanah anvaya-vyatirekābhyām yat syāt sarvatra sarvadā

अर्थ: [चौथा तथा अन्तिम श्लोक।] आत्मा के सत्य के जिज्ञासु को केवल इसी की खोज तथा निश्चय करना चाहिए: उस सत्य की, जो सर्वत्र तथा सदा विद्यमान है, चाहे उसे भाव-विधि (हाँ, यह है) से देखा जाए अथवा अभाव-विधि (नहीं, यह नहीं है) से। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 35)



भगवान् ब्रह्मा को भागवत के चार सार-श्लोक सुनाते हैं — एक ऐसा उपदेश जो इतना पूर्ण है कि सम्पूर्ण शास्त्र को परम्परागत रूप से इन्हीं का विस्तार माना जाता है (श्लोक 32-35)।

ये चार श्लोक कह देने के बाद, भगवान् एक और उपदेश जोड़ते हैं — जो स्वयं इन चारों में गिना नहीं जाता, किन्तु इन्हें जीवन में उतारने की कुंजी है: ब्रह्मा को इस शिक्षा में तपस्या तथा स्थिर एकाग्रता के माध्यम से पूर्णतः स्थापित हो जाना चाहिए, ताकि आने वाली सृष्टि के अनन्त चक्रों में वे कभी भी अभिमान अथवा भ्रम से विचलित न हों।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३६ ॥

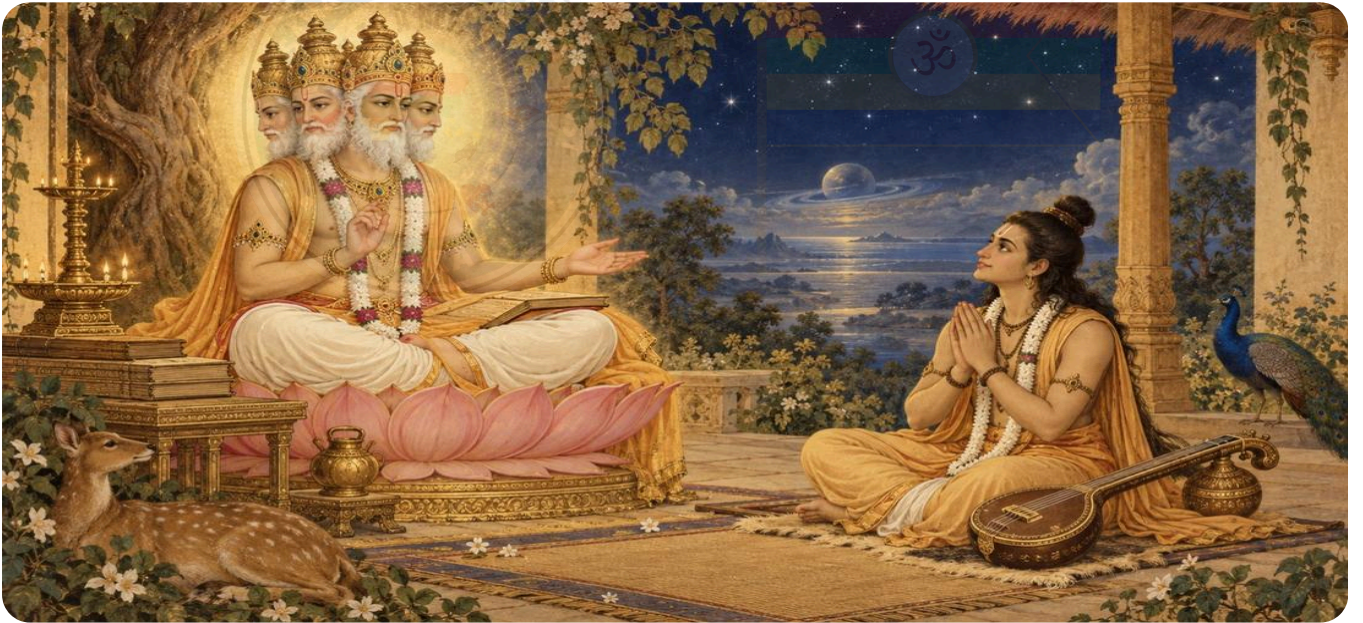
etan mataṁ samātiṣṭha parameṇa samādhinā bhavān kalpa-vikalpeṣu na vimuhyati karhicit

अर्थ: मेरी इस शिक्षा में परम एकाग्रता के द्वारा स्वयं को दृढ़तापूर्वक स्थापित करो; ऐसा करने से तुम विभिन्न कल्पों में कभी भी भ्रमित नहीं होगे।
(स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 36)

भगवान् अन्तर्धान होते हैं, तथा शिक्षा व्यास तक पहुँचती है

ब्रह्मा को इस प्रकार उपदेश देकर, अजन्मा भगवान् श्रीहरि ने अपना वह दृश्य स्वरूप समेट लिया, जबकि ब्रह्मा आश्चर्यचकित होकर देखते ही रह गए। सभी प्राणियों का प्रतिनिधित्व करने वाले ब्रह्मा ने उन हरि को, जिन्होंने अब अपना दृश्य रूप छिपा लिया था, जुड़े हुए हाथों से प्रणाम किया, तथा पूर्ववत् (पूर्व चक्र की भाँति) सृष्टि का कार्य पुनः आरम्भ किया। समस्त सृजित प्राणियों के कल्याण की उत्कण्ठा में, उन्होंने उसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु यम तथा नियम — योग के मूलभूत सिद्धान्तों — का पालन किया, जो भगवान् ने उन्हें दिखाया था।

इसी काल में नारद, ब्रह्मा के पुत्रों में सर्वाधिक प्रिय तथा भगवान् के एक श्रेष्ठ भक्त, भगवान् विष्णु की माया के आश्चर्य को जानने की उत्कण्ठा से, इतनी भक्ति, विनम्रता तथा संयम के साथ अपने पिता की सेवा करते रहे कि ब्रह्मा पूर्णतः सन्तुष्ट हो गए। अपने पिता को प्रसन्न पाकर, नारद ने उनसे वही प्रश्न पूछे जो परीक्षित ने अब शुकदेव से पूछे हैं। और ब्रह्मा, अपने पुत्र के प्रश्न से हर्षित होकर, नारद को इसी दस लक्षणों वाले भागवत-पुराण को पुनः सुनाया — वही शिक्षा जो भगवान् ने एक बार उन्हें दी थी।



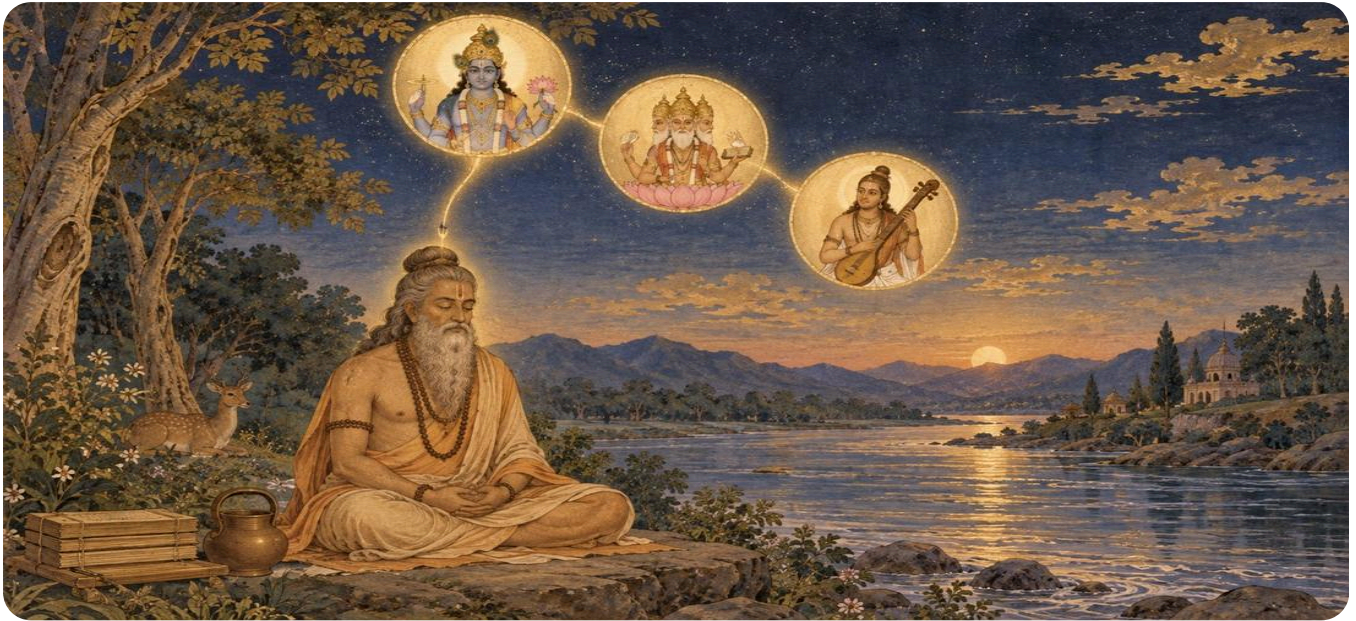
अपने पुत्र के उत्कट प्रश्न से हर्षित होकर, ब्रह्मा नारद को वही भागवत-पुराण सुनाते हैं जो भगवान् ने उन्हें सिखाया था — इस हस्तान्तरण की शृंखला की प्रथम कड़ी जो व्यास तक पहुँचैगी (श्लोक 39-43)।

नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ।

ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायामिततेजसे ॥ ४४ ॥

nāradaḥ prāha munaye sarasvatyās taṭe nṛpa dhyāyate brahma paramaṁ vyāsāyāmita-tejase

अर्थ: नारद ने, हे राजन्, इसी शिक्षा को अपार तेजस्वी ऋषि व्यास को सुनाया, जब व्यास सरस्वती नदी के तट पर परम ब्रह्म का ध्यान कर रहे थे। (स्कन्ध 2, अध्याय 9, श्लोक 44)



वह अद्वैत हस्तान्तरण-शृंखला — भगवान् से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से नारद को, नारद से सरस्वती के तट पर व्यास को — जिसके माध्यम से भागवत-पुराण इस वर्तमान कथन तक पहुँचता है (श्लोक 43-45)।

इसके साथ, शुकदेव इस चक्र को पूर्ण करते हैं: यही शास्त्र, उसी अद्वैत शृंखला से प्राप्त, अब वे परीक्षित के प्रश्नों के उत्तर में विस्तार से सुनाएँगे — यह ब्रह्माण्ड विराट् पुरुष से किस प्रकार उत्पन्न हुआ, तथा परीक्षित की जिज्ञासा से सम्बन्धित अन्य सभी बातें।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जाता है, गढ़ा नहीं जाता। ब्रह्मा सृष्टि के लिए अपना मार्ग स्वयं नहीं गढ़ते; वे एक अदृश्य आज्ञा सुनते हैं, केवल विश्वास पर तपस्या करते हैं, तथा तत्पश्चात् ही उन्हें दर्शन का पुरस्कार मिलता है। यह अध्याय एक हस्तान्तरण-शृंखला का आदर्श प्रस्तुत करता है — भगवान् से ब्रह्मा को, ब्रह्मा से नारद को, नारद से व्यास को — जिसमें कोई भी कड़ी मौलिकता का दावा नहीं करती (श्लोक 5-9, 39-45)।
2. तपस्या ईश्वर से पृथक् आत्म-प्रयास नहीं है — वह उन्हीं का हृदय है। भगवान् घोषित करते हैं कि तपस्या ही वह साधन है जिससे वे स्वयं ब्रह्माण्ड की रचना, पालन तथा संहार करते हैं; तपस्या किसी दूर के ईश्वर तक पहुँचने की कोई तकनीक नहीं, अपितु स्वयं ईश्वर जो पहले से ही है उसमें सहभागिता है (श्लोक 19-23)।
3. सच्ची प्रार्थना समझ माँगती है, सामर्थ्य नहीं। कोई भी वरदान माँगने की अनुमति पाकर, ब्रह्मा केवल यह समझना चाहते हैं कि भगवान् की माया कैसे कार्य करती है, तथा सृष्टि के एक साधन के रूप में सेवा करते हुए कर्तृत्व एवं अभिमान से मुक्त रहना चाहते हैं (श्लोक 24-29)।

4. सम्पूर्ण भागवत चार श्लोकों में समाया हुआ है। चतुःश्लोकी सृष्टि के पूर्व तथा पश्चात् भगवान् के एकमात्र अस्तित्व को स्थापित करती है, माया को प्रकट किन्तु अन्ततः असत्य के रूप में परिभाषित करती है, तत्त्वों-में-प्राणी के दृष्टान्त द्वारा ईश्वर की अन्तर्यामिता तथा परात्परता के विरोधाभास को सुलझाती है, तथा उस एकमात्र जिज्ञासा को प्रस्तुत करती है — सर्वत्र तथा सदा विद्यमान उस एकमात्र सत्य की — जिसे प्रत्येक साधक को अपनाना चाहिए (श्लोक 32-35)।

5. ईश्वर का दर्शन एक ऐसा उपहार है जिसे जीना है, केवल पाना नहीं। ब्रह्मा को दिया गया भगवान् का अन्तिम उपदेश और अधिक जानकारी नहीं, अपितु एकाग्रता तथा दृढ़ता का आह्वान है, ताकि कृपा के एक क्षण में प्राप्त की गई शिक्षा भविष्य के प्रत्येक सृष्टि-चक्र में टिकी रहे (श्लोक 36)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के निर्माण में एक शान्त सच्चाई है। ब्रह्मा — वही शिल्पकार जो शीघ्र ही चौदह लोकों का निर्माण करेंगे — अपना कार्य अपने ही ज्ञान से आरम्भ नहीं करते। वे भ्रम में प्रतीक्षा करते हैं जब तक कोई अदृश्य वाणी दो अक्षर नहीं बोलती, और वे उस वाणी पर इतना विश्वास करते हैं कि कुछ भी देखे बिना एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या करते हैं। तभी भगवान् प्रकट होते हैं, और तभी वे वे चार श्लोक कहते हैं जो सब कुछ समझा देते हैं: कि वे ही थे, हैं, तथा रहेंगे; कि जो भी उनसे पृथक् प्रतीत होता है वह माया है; कि वे किसी प्रकार प्रत्येक सृजित वस्तु के भीतर तथा बाहर दोनों हैं; और कि यह एकमात्र सत्य, दृढ़तापूर्वक खोजा गया, ही एकमात्र योग्य जिज्ञासा है। चतुःश्लोकी को अमूर्त दर्शनशास्त्र के रूप में पढ़ना सरल है। यह अधिक कठिन है — तथा इस अध्याय की प्रस्तुति के अधिक निकट है — इसे उस श्रोता से कही गई बात के रूप में पढ़ना जो पहले ही प्रतीक्षा कर चुका था, पहले ही समर्पण कर चुका था, और जिसने केवल अन्तर्दृष्टि के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगा था। ये श्लोक भक्ति द्वारा गढ़े गए प्रश्न का उत्तर देते हैं, इससे पहले कि वे जिज्ञासा द्वारा गढ़े गए प्रश्न का उत्तर दें। सम्भवतः यही कारण है कि यह अध्याय शिक्षा को ब्रह्मा के साथ रुकने नहीं देता: यह इसे नारद तथा व्यास तक आगे ले जाने पर बल देता है, मानो यह कहना चाहता हो कि मौन तथा विनम्रता में प्राप्त सत्य को रखा नहीं, अपितु हाथों-हाथ आगे बढ़ाया जाना है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपनी किसी भी योजना अथवा प्रयास की ओर मुड़ने से पहले, कुछ क्षण मौन बैठें और कारण-जल के निकट ब्रह्मा की दीर्घ प्रतीक्षा को स्मरण करें — कैसे उन्होंने केवल दो अक्षर सुने, और कैसे वे दो अक्षर पर्याप्त थे। स्वयं से पूछें कि आज आपके अपने जीवन में “तप” का क्या अर्थ हो सकता है: आवश्यक नहीं कि तपस्वी अर्थ में कठोरता ही हो, अपितु यह इच्छा कि अनिश्चितता में स्वयं के उत्तरों से उसे भरने की जल्दबाज़ी करने के बजाय स्थिर रहा जाए। तत्पश्चात् अपने मन को, क्षणभर के लिए ही सही, भगवान् के चार श्लोकों में से प्रथम पर टिकने दें — *सृष्टि से पूर्व मैं ही अकेला था, और मैं ही अकेला शेष रहूँगा* — इस स्मरण के रूप में कि आज जो कुछ भी घटित होगा वह किसी ऐसी वस्तु के भीतर धारण है जो न आती है, न जाती है। उस मन्त्र को धीरे से दोहराते हुए समाप्त करें जिसने इस सम्पूर्ण श्रृंखला को उसके प्रथम पृष्ठ से यहाँ तक पहुँचाया है: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।”

उपसंहार

द्वितीय स्कन्ध का नवम अध्याय, अनेक अर्थों में, सम्पूर्ण भागवतम् की सैद्धान्तिक आधारशिला है। जहाँ पूर्ववर्ती अध्यायों ने विराट् पुरुष के अंगों तथा तत्त्वों के प्रकट होने का वर्णन किया, वहीं यह अध्याय उस सबके पीछे उस क्षण तक पहुँचता है जब स्वयं भगवान् ने पहली बार ब्रह्मा से बात की — उन्हें, चार संक्षिप्त श्लोकों में, वह सब सिखाते हुए जिसे आगे आने वाले अठारह हज़ार श्लोक एक सम्पूर्ण शास्त्र के रूप में विस्तार देंगे। ब्रह्मा की तपस्या, उनका दिव्य धाम का दर्शन, सामर्थ्य के बजाय अन्तर्दृष्टि के लिए उनकी विनम्र प्रार्थना, तथा अन्ततः चतुःश्लोकी की उनकी प्राप्ति — ये सब मिलकर एक ही चाप बनाते हैं: भ्रम से, समर्पण के माध्यम से, एक ऐसी शिक्षा तक जो इतनी पूर्ण है कि वह एक सम्पूर्ण परम्परा का बीज बन जाती है। और यह अध्याय ब्रह्मा के साथ अकेला समाप्त नहीं होता — यह शिक्षा को आगे, अपने पिता के पास बैठे नारद तक, तथा सरस्वती के तट पर बैठे व्यास तक ले जाता है, यह दर्शाते हुए कि यह ज्ञान कभी भी केवल एक प्राप्तकर्ता, चाहे वह कितना भी महान् क्यों न हो, तक सीमित रहने के लिए नहीं था। यह सदैव आगे बढ़ने के लिए था — और यह आज भी बढ़ रहा है, इस शास्त्र की हर पुनर्कथा में, इसी सहित।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), द्वितीय स्कन्ध, नवम अध्याय, पृष्ठ 122–127।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र जी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी भी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका की प्रतिकृति नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता अथवा समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-2-adhyay-9-brahma-divya-dham-charshlok.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट